Sharadha sarg part 4

घूमने का मेरा अभ्यास,
बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य;

कुतूहल खोज रहा था व्यस्त
हृदय सत्ता का सुंदर सत्य।

दृष्टि जब जाती हिम-गिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर,

धरा की यह सिकुड़न भयभीत
आह कैसी है? क्या है पीर?

मधुरिमा में अपनी ही मौन,
एक सोया संदेश महान,

सजग हो करता था संकेत;
चेतना मचल उठी अनजान।

बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल मालाओं का शृंगार;

आँख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुंदर संभार!

एक दिन सहसा सुंधु अपार
लगा टकराने नग तल क्षुब्ध;

अकेला यह जीवन निरुपाय
आज तक घूम रहा विश्रब्ध।

यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न,
भूत-हित-रत किसका यह दान!

इधर कोई है अभी सजीव
हुआ ऐसा मन में अनुमान।

तपस्वी! क्यों इतने हो क्लांत?
वेदना का यह कैसा वेग?

आह! तुम कितने अधिक हताश
बताओ यह कैसा उद्‌वेग!

हृदय में क्या है नहीं अधीर,
लालसा जीवन की निश्शेष?

कर रहा वंचित कहीं न त्याग
तुम्हें, मन में धर सुंदर वेश!

दु:ख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,

काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बन कर अनजान।

कर रही लीलामय आनंद,
महा चिति सजग हुई सी व्यक्त,

विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।

काम मंगल से मंडित श्रेय
स्वर्ग, इच्छा का है परिणाम;

तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम।

“दु:ख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;

एक परदा यह झीना नील
छिपाए है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल;

ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;

यही दु:ख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान;

व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुखमणि गण द्युतिमान!"

व्याख्या-

उस आगंतुक रमणी का कहना है कि स्वच्छंद प्रकृति की होने के कारण मैं इस विस्तृत उन्मुक्त आकाश के नीचे दिन-प्रतिदिन इधर-उधर घूमती रहती थी और इस प्रकार मेरी यह आदस-सी पड़ गई कि चारों ओर घूमकर प्रकृति की सुंदर छवि देखी जाय। वह बाला कहती है कि इस प्रकार प्रकृति के विभिन्न दृश्यों की मनोहर सुषमा को देख, आश्चर्यकित हो मैं अपने हृदय से उठने वाले रहस्यों को सुलझाने की चेष्टा करती और हमेशा यह जानने को उत्सुक रहती कि आख़िर इन सुंदर वस्तुओं में विद्यमान सत्य क्या है?

वह आगंतुक रमणी कह रही है कि मेरा मन प्राकृतिक दृश्यों की सुषमा निहार कर रहस्य से पूर्ण हो जाता था और कुतूहल मिटाने के लिए भी वह स्वभाविक ही अधीर

हो उठता था अतएव हिमालय पर्वत को देखकर ही कभी-कभी मैं यह सोचने लगती कि आख़िर धरती के हृदय में ऐसी कौन-सी पीड़ा है या उसे कौन-सा कष्ट है कि इसके कारण उसके मस्तक पर चिंता की सिकुड़न पड़ गई है। यहाँ यह स्मरणीय है कि जब कोई भी प्राणी किसी व्यथा से पीड़ित होता है और उसके मन में चिंताएँ-सी उठने लगती है उस समय स्वाभाविक ही उसके मस्तक पर सिकुड़न-सी आ जाती है। अत: इन पंक्तियों में वह बाला हिमालय को धरती के ललाट की सिकुड़न ही मानती है और उसका अनुमान है कि कदाचित् किसी आंतरिक व्यथा के कारण पृथ्वी के मस्तक पर सिकुड़न-सी पड़ गई है और यही सिकुड़न हिमालय के रूप में दीख पड़ती है।
वह आगंतुक बाला कहती है कि हिमालय पर्वत के मौन सौंदर्य की ओर देखने पर कभी-कभी यह भी आभास होने लगता कि उसकी इस नीरव सुषमा में कोई न कोई महान और गुप्त संदेश अवश्य है। इस प्रकार मेरे मन में यह जानने की इच्छा बलवती हो उठी कि आख़िर वह संदेश क्या है।

उस रमणी का कहना हे कि ज्यों ही मेरे मन में हिमालय के मौन सौंदर्य में विद्यमान गुप्त संदेश को जानने की उत्सुक्ता जागृत हुई त्यों ही मेरे चरण भी आगे बढ़ चले। इस प्रकार रमणीय पर्वत शृंखलाओं में अनेक मनोहर दृश्यों को देख मेरे नेत्रों की प्यास बुझ गई और मैं इसी निष्कर्ष में पहुँची कि यह पर्वत ऊपर वैभवशाली है तथा उनकी साज-सज्जा भी मनोहरिणी है।
उस बाला ने मनु से पुन: कहा कि एक दिन अचानक इसी हिमालय पर्वत के नीचे अपार सागर अपने पूरे वेग से उमट उठा और वह गरजता हुआ पर्वत की तलहटी से टकराने लगा। वस्तत: इन पंक्तियों में उस रमणी ने भीषण जल प्रलय की ओर संकेत किया है और उसका कहना है कि एक दिन हिमालय पर्वत के चारों ओर जल ही जल दीख पड़ने लगा तथा उसी समय से मैं नित्प्राय-सी हो इधर-उधर अकेली निश्चिंत घूम रही हूँ।

वह आगंतुक रमणी मनु से कह रही है कि अकेले घूमते-घूमते मैं इस ओर निकल आई और मैंने जब यहाँ पास में ही यज्ञ से बचा हुआ कुछ अन्न देखा तब मुझे यह अनुमान-सा होने लगा कि प्राणियों के हित साधन में तत्पर कोई न कोई प्राणी अवश्य जीवित है। इस प्रकार मुझे यह विश्वास हो गया कि जल प्रलय के पश्चात् मेरे समान कोई दूसरा प्राणी भी जीवित बच रहा है अन्यथा यह अन्न यहाँ न दिखाई देता।

वह बाला मनु को संबोधित कर कहती है कि हे तपस्वी! तुम क्यों इतने दु:खी और निराश जान पड़ते हो तथा तुम्हें इतनी अधिक व्यथा क्यों हो रही है। उसे मुनु को इतना अधिक निराश देखकर आश्चर्य होता है और वह उनसे पूछती है कि तुम्हारी इस अशांति का कारण क्या है?

वह आगंतुक रमणी मनु से कह रही है कि क्या अब तुम्हारे हृदय में और अधिक दिन जीवित रहने की चाह तथा जीवन के प्रति कुछ भी मोह नहीं रहा जो तुम इस प्रकार निराश से बैठे हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे हृदय की विराग भावना ही सुंदर आकर्षक रूप धारण कर तुम्हें धोखा दे रही है अर्थात् तुम्हें जीवन से एकाएक विरक्त बना रही है और कहीं तुम अनुराग के अभाव में विविश होकर त्याग की ओर तो उन्मुख नहीं हो गए। उस रमणी का कहना है कि यदि वास्तव में यही कारण है तो फिर तुम्हें पर्याप्त सावधानी रखनी चाहिए और इन अनुमानित प्रवादो को भुलाकर जीवन से पुन: अनुराग करना चाहिए अन्यथा हो सकता है कि तुम हमेशा के लिए जीवन के वास्तविक सुखों से वंचित हो जाओ।
वह आगंतुक रमणी मनु को संबोधित कर कहती है कि कहीं तुम पहले से ही अज्ञात उलझनों का अनुमान कर उनसे उत्पन्न होने वाले दु:खों की कल्पना मात्र से ही तो घबड़ा कर कर्मक्षेत्र से विमुख नहीं हो गए। इसका अभिप्राय यह है कि बहुत मनुष्य स्वंय ही अज्ञात कल्पनाओं के भय से डर कर जीवन से प्रगति करना छोड़कर पलायन की प्रवृत्ति धारण करते हैं और कभी भी प्रगति नहीं कर पाते। वस्तुत: भय तो मन की अनुभूति ही हे और अज्ञात भय की कल्पना से ही कभी-कभी बहुत से लोग साहस खो बैठते हैं अत: वह बाला मनु को स्वाभाविक ही यह प्रेरणा देना चाहती है कि वे व्यर्थ ही न घबड़ाएँ और जीवन से प्रेम करना सीखें। इसलिए वह कहती है कि कहीं इस भय से कि जीवन दु:खमय न हो, वे अज्ञात उलझनों की कल्पना कर कर्मक्षेत्र से पीछे तो नहीं हट रहे हैं। उनका कहना है कि वे यह क्यों भूल जाते हैं कि कल्पनाओं में वास्तविकता नहीं रहती और हम जो भी अनुमान करते हैं वह कभी भी पूर्ण सत्य नहीं होता अत: यह भी संभव है कि आज जिस भविष्य की कल्पना से हम भयभीत हो रहे हों वह उससे सर्वथा भिन्न हो और हम केवल आशंकाओं से ही भयभीत हो रहे हों।

वह बाला कह रही है कि यह सृष्टि जो कि अत्यंत सुंदर एवं आकर्षक प्रतीत होती है और जिसमें सभी अनुरक्त हैं, वास्तव में चेतन ब्रह्म अर्थात् परमात्मा की लीला का ही व्यक्त रूप है। अतएव जब ईश्वर स्वंय ही कर्म में लीन है तब उसके द्वारा

निर्मित मानव का कर्म से विमुख होना अनुचित ही है। यहाँ सह स्मरणीय है कि सृष्टि निर्माण के संबंध में यह मत प्रचलित है कि जब परमात्मा एकाकीपन के भार से ऊब गया तब उसकी इच्छा एक से अनेक हो जाने की हुई और इसी अभिलाषा से उसने अपनी माया शक्ति से इस संसार को रच दिया। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि परमात्मा की आनंदपूर्ण लीला से ही सृष्टि निर्माण होने के कारण यह संसार अत्यधिक सुंदर और आकर्षक प्रतीत होता है। यही कारण है कि आगंतुक रमणी भी मनु को यह प्रेरणा देती है कि मानव मात्र को कर्म में रत रहने पर ही सच्चा सुख मिल सकता है।
वह बाला मनु से कह रही है कि जब हम इस सृष्टि की उत्पत्ति पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी उत्पत्ति काम अर्थात् इच्छा से हुई है और यह उसका ही परिणाम है। इस प्रकार कवि ने श्रद्धा द्वारा सृष्टि के निर्माण को ही सर्वोपरि सिद्ध किया है और वास्तव में जब मनुष्य को किसी वस्तु की आकांक्षा होती है तभी वह कर्म में प्रवृत्त होता है। वास्तव में इस सृष्टि से भाँति-भाँति की कामनाएँ उत्पन्न होकर जगत कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त करती हैं अन्यथा सृष्टि का विकास असंभव था। यह तो निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि शुभ कर्म करने से कल्याण होता है अत: काम का तिरस्कार करना युक्ति संगत नहीं है। इस प्रकार श्रद्धा मनु से कहती है कि तुम वैराग्य धारण कर काम अर्थात् इच्छा का तिरस्कार कर बड़ी भारी भूल कर रहे हो और इससे तुम्हारा सांसारिक जीवन असफल ही सिद्ध होता है।

वह रमणी अर्थात् श्रद्धा मनु से कह रही है कि जिस प्रकार रात्रि के समाप्त होते ही सुखद सवेरा आ जाता है उसी प्रकार दु:ख के पश्चात् सुख का आगमन स्वाभाविक ही है और जैसे कि उषा का सुंदर तन अंधकार के भीगे आवरण में ढका रहता है उसी तरह दु:ख-सुख दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं और जीवन में दु:ख स्थायी नहीं है बल्कि उसकी भी एक अवधि है। अतएव दु:ख-सुख दोनों ही जीवन में क्रमानुसार आते-जाते रहते हैं और प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह धैर्य धारण करें तथा कभी भी दु:ख में अपना साहस न खो बैठे। इस प्रकार मनुष्य को यह विश्वास रखना चाहिए कि जिस प्रकार साधन अंधकार मिटते ही सुखद प्रभात की शुभ्र आभा दृष्टिगोचर होती है उसी प्रकार दु:ख रूपी परदा हटते ही सुख का नवीन संसार झलक उठता है।
वह बाला अर्थात् श्रद्धा मनु से कह रही है कि तुम जिस दु:ख को अपने लिए अमंगल समझते हो और जिसे तुम संसार की सभी आपत्तियों का मूल समझ बैठे हो वह वास्तव में ईश्वर द्वारा ही प्रदत्त है अर्थात् ईश्वर ही हमें दु:ख-सुख दोनों प्रदान करता है। इस प्रकार यह सृष्टि तो ईश्वर को एक रहस्यपूर्ण देन ही है और यहाँ दु:ख में ही

सुख समाया है तथा मनुष्य को कभी भी दु:ख में अपना साहस न खोना चाहिए बल्कि साहसपूर्वक कठिनाइयों का सामना करना चाहिए।

वह आगंतुक रमणी अर्थात् श्रद्धा मनु को समझाते हुए कहती है कि यह विशाल विश्व वैषम्य से पीड़ित होने के कारण ही स्पंदनशील है अर्थात् यदि इस जगत में इतनी अधिक विषमता न होती तो फिर उसमें सुख का सर्वत्र अभाव ही हो जाता। कहने का अभिप्राय यह है कि विषमता ही इस जगत का जीवन है और उसी के कराण सुख एवं सहानुभूति की भावना इस जगत में दीख पड़ती है। वास्तव में स्वयं पीड़ा सहने पर ही मनुष्य को दूसरे का दु:ख समझ में आ पाता है और यह विशाल जगत आपदाओं से उत्पन्न होने वाली पीड़ा को सहन कर ही सहृदय बन सका है। इस प्रकार दु:ख ही मानव मात्र के सुख एवं उसकी उन्नति का कारण है और इसे भूमा अर्थात् परमात्मा का सुंदर दान समझकर ग्रहण करना चाहिए क्योंकि यही मानव जीवन को कोमल, उदार और विशाल बनाकर जीवन में मधुरता ला देता है तथा इसी से जीवन में क्रियाशीलता की भावना भी उत्पन्न होती है जिससे कि मनुष्य प्रगति करने में सफल हो पाता है।
वह आगंतुक रमणी अर्थात् श्रद्धा मनु से कहती है कि यदि मानव में वैषम्यता अर्थात् उतार चढ़ाव न हो तो मनुष्य स्वाभाविक ही इस एक रसता अर्थात् जीवन से ऊब उठेगा। इस प्रकार जीवन में उतार-चढ़ाव आवश्यक है क्योंकि एकरसता कभी भी प्रिय नहीं होती। श्रद्धा का कहना है कि ईश्वर भी प्राणियों को एक रस नहीं रहने देता और जो हमेशा सुख प्राप्त में लगा रहा है उसके जीवन में एक दिन वह भी आता है जबकि उसके मानस में भीषण हलचल-सी मच जाती है तथा जिस प्रकार समुद्र की लहरों से हलचल मचते ही उसकी सतह में छिपी मणियाँ ऊपर आकर नीली लहरों में बिखरी जान पड़ती है उसी प्रकार सुख भी पीड़ा से छिन्न-भिन्न हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को समरसता की प्राप्ति न होने के कारण ही सुख और दु:ख से पूर्ण विषमता के थपेड़े सहन करने पड़ते हैं।